International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030, Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 2; Issue 4; July 2017; Page No. 426-428

भारतीय संविधान में अनुसूचित जातियों की समस्याओं के समाधान की व्यवस्था

डॉ0 आलोक कुमार सिंह

अध्यक्ष, राजनीतिशास्त्र विभाग, डी0एन0 पी0जी0 कॉलेज, फतेहगढ, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में अवसर की समानता, सामाजिक, राजनीतिक, व आर्थिक न्याय की संकल्पना की गयी है। एक परम्परावादी सामाजिक संरचना में आधुनिक राजनीति समस्याओं की स्थापना भारतीय राजनीति का एक अद्भुत पक्ष है। उदारवादी जनतन्त्रीय संस्थाओं और आधुनिक मूल्यों तथा मान्यताओं को अपनाने के परिणामस्वरूप भारतीय राजनीति और जाति व्यवस्था का पारस्परिक सम्बन्ध एक आश्चर्यजनक समस्या प्रस्तुत करता है। जातिव्यवस्था भारतीय समाज का अटूट अंग रही है और इसने जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित किया है।

स्वतंत्रता से पूर्व भी जाति व्यवस्था का राजनीतिक जीवन पर काफी प्रभाव रहा। स्वतन्त्रता के बाद जातिव्यवस्था का अन्त नहीं हुआ लेकिन उसका स्वरूप अवश्य परिवर्तित हुआ। जाति व्यवस्था हमारे इस प्रजातंत्र के सामने एक प्रबल चुनौती के रूप में उभरी है, जो व्यवस्था समस्त जाति–व्यवस्था व उसके अभिशापों को निर्मूल करने के संकल्प के साथ अस्तित्व में आई, वही व्यवस्था इनके अस्तित्व को सदा बनाए रखने के लिए पूरा संरक्षण व सुरक्षा दे, यह कैसी विडम्बना है?

वस्तुतः ऋग्वैदिक काल से ही जाति व्यवस्था भारतीय समाज की अभिन्न व्यवस्था रही है। एक ओर परम्परागत सामाजिक ढाँचे से प्राप्त होने वाले इनके शक्ति स्त्रोत कमजोर हुए हैं तो दूसरी ओर आज इनको प्रचलित राजनीतिक व्यवस्था में और भी अधिक शक्ति मिल रही है। इसलिए राजनीतिशास्त्र के विद्यार्थी या अध्ययनकर्ता के लिए समाजशास्त्र के विद्यार्थियों की अपेक्षा कहीं अधिक इसका अध्ययन करना महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि इस जातिवादी राजनीति के ज्ञान के बिना भारतीय राजनीति व संस्कृति में विशेषकर उत्तर प्रदेश और बिहार की राजनीतिक संस्कृति के चक्रव्यूह को भेद पाना अत्यधिक कठिन है। राजनीतिक दृष्टि से जाति भावना इतनी बढ़ गई है कि इसकी चरम सीमा जाति–भक्ति तक पहुँच गई है जो जातीय संघर्ष का कारण बन गई है इस अन्धानुकरण की भावना के आगे समुदाय, राष्ट्र व देश गौण हो गए।

जाति व्यवस्था की कलुषता यदि एक ओर प्रजातंत्र के एक अभिशाप है तो दूसरी तरफ इसने अब तक दबी–कुचली जातियों में राजनीतिक चेतना एवं महत्वाकांक्षाओं को उत्पन्न करके प्रजातंत्र के आधार को व्यापक भी बनाया है। अनुसूचित जातियों को प्रायः अलग–अलग नामों से जाना जाता है, जैसे–अस्पृश्य अन्त्वज, बहिष्कृत जातियाँ, दलित वर्ग, हरिजन आदि। वर्तमान में सामाजिक व्यवहार में 'हरिजन' शब्द और वैधानिक व्यवहार में अनुसूचित जाति प्रचलित है।

हरिजन या दलित संवर्ग को भारतीय सामाजिक संस्तरण के सबसे निम्न स्तर पर रखा गया, इनको मानवता के अधम नमूने के रूप में देखा गया। सम्भवतः ऐसा इन जातियों के द्वारा अपनाए गए अपवित्र व्यवसाय के सम्पादन के कारण हुआ उसी से इनके ऊपर अनेक सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक निर्योग्यताओं को थोपा गया। फलतः इनकी स्थिति निकृष्ट हो गई। हरिजन या दलित संवर्ग जिन्हें संविधान में अनुसूचित जाति की संज्ञा दी गयी परम्रागत परिप्रेक्ष्य में सबसे निकृष्ट और अधम थी इनकों गाँव से बाहर अलग बस्तियों में रहना पड़ता था। इनकी परछाई तक से लोग अशुद्ध हो जाते थे। इसलिए इनको चलने की उस समय इजाजत थी जब इनकी परछाई छोटी हो जाती थी। कुछ स्थानों पर तो इनकों गले में घंटी बाँधनी पड़ती थी, जिससे इनके आने या रास्तों में होने का दूर से ही संकेत मिलता थ। इनको अपने काम के बदले जूठन बासी बचा खना तथा खराब समझा जाने वाला खाना या अनाज मिलता था। यह लोग अपने पेशे को नहीं छोड़ सकते थे तथा आर्थिक रूप से सम्पन्न उच्च जातियों पर ही निर्भर रहते थे, शिक्षा से तो ये सदा वंचित ही रहते थे। सार्वजनिक कुओं, तालाबों, धार्मिक स्थलों तथा अन्य इसी प्रकार के स्थानों पर इनका प्रवेश करना निषेध था। उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में अस्पृश्यों की स्थिति और भी दयनीय थी। अस्पृश्यों में भी अस्पृश्यात्मक संस्तरण था जो अधिक निकृष्ट व अपवित्र समझे जाने वाले कार्यों का सम्पादन करते थे उनको अधिक अशुद्ध व अस्पृश्य माना जाता था। इस प्रकार ल्वार की अस्पृश्यता, चमार की अस्पृश्यता, मेहतर की अस्पृश्यता, धानुक व खाटिक की अस्पृश्यता में मात्रात्मक अन्तर माना जाता था और उसी अनुपात में इनके छूने के कारण उत्पन्न दोषों के निवारणार्थ प्रायश्चित के उपायों की व्यवस्था थी। इन स्थितियों से इनके राजनीतिक स्वत्व का प्रश्न ही नहीं था।

भारतीय वुद्धिजीवी विचारकों द्वारा जन जागरूकता, शिक्षा का प्रसार, अंग्रेजी शासन के प्रसार, राष्ट्रीय चेतना के विकास, वैज्ञानिक दृष्टि के फैलाव तथा सांस्कृतिक सम्मिश्रण आदि प्रक्रियाओं के कारण भारतीय समाज में जो नवजागरण उत्पन्न हुआ इससे इनकी स्थिति को लेकर सकारात्मक सोंच उत्पन्न हुयी। धार्मिक व सामाजिक सुधार आन्दोलनों और अम्बेडकर तथा गांधीजी जैसे समाज सुधारकों के प्रयास से इस व्यवस्था की कट्टरता प्रभावहीन होने लगी।

जन जागरूकता, औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, आधुनिकीकरण, संचार व यातायात के साधनों में आई क्रान्ति के कारण इसमें गतिशीलता आई देश की आजादी के बाद इन प्रक्रियाओं को और भी प्रोत्साहन मिला। भारतीय संविधान के क्रियान्वयन से इस समुदाय को काफी सुरक्षा मिली। इससे इनमें राजनीतिक चेतना का संचार हुआ और इनमें सामाजिक एवं राजनीतिक गतिशीलता बढ़ी है।

ब्रिटिश काल में सरकारी अभिलेखों में सन् 1931 के पूर्व इनके लिए दलित वर्ग लिखा जाता था। सन् 1931 की जनगणना में असम की जनगणना अधीक्षक ने इनके लिए बहिष्कृत जातियाँ लिखने का अपना सुझाव दिया इससे यह आशय लगाया गया कि ये हिन्दू जाति संरचना के बाहर की जातियाँ हैं। इसी के आधार पर (मैक्डानल्ड अवार्ड) में इनको 'पृथक् निर्वाचक मंडल' की व्यवस्था का प्रस्ताव रखा गया और जिसको अम्बेडकर का समर्थन भी प्राप्त था। शायद अंग्रेजी शासन जाति व्यवस्था का इस्तेमाल राजनीतिक उद्देश्यों के लिए करना चाहती था, गांधीजी ने इसका विरोध किया

और आमरण अनशन किया। अन्त में पूना पैक्ट (1932) हो जाने से अंग्रेज अपने उद्देश्य में सफल नहीं हुए। गांधीजी ने इनके लिए इसी समय हरिजन नाम दिया था। इनके कल्याण के लिए उन्होंने हरिजन सेवक संघ की स्थापना भी की।

भारत शासन अधिनियम 1935 में एक सूची के अन्तर्गत इनको सम्मिलित किया गया जिसमें 429 जातियाँ थीं। इस सूची में परिगणित जातियों को ही अनुसूचित जाति के नाम से जाना गया। ब्रिटिश शासन ने भारत सरकार (अनुसूचित जातियाँ) आदेश 1936 जारी किया जिसमें तत्कालीन प्रान्तों असम, बिहार, बम्बई, बंगाल, मध्य प्रदेश तथा मद्रास, बरार, जंजाब, उड़ीसा और संयुक्त प्रान्त की कुछ जातियों को अनुसूचित जातियों के रूप में घोषित किया। सरकार ने ऐसा इनकों कुछ विशिष्ट सुविधाएँ प्रदान करने के लिए किया था।

भारतीय संविधान एक लोकतंत्रात्मक एवं गणतंत्रात्मक संविधान है यह स्वतंत्रता, सामाजिकता और बंधुत्व के मानवीय आदर्शों के साथ सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय के लिए प्रतिबद्ध है। परन्तु अनुसूचित जाति की समस्याओं को देखते हुए इनकों विशेष संविधानिक संरक्षण आवश्यक था इसलिए संविधान में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, पिछड़े वर्गों तथा अल्पसंख्यकों के विकास के लिए विशेष प्रावधान रखा गया।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 341 का खण्ड 1 के अनुसार राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि वह किसी राज्य या संघीय क्षेत्र के विषय में सम्बन्धित राज्य अथवा संघ क्षेत्र के किसी भी जाति के मूलवंश अथवा जातियों के किसी भाग को या उनके समूहों को उस राज्य अथवा संघ क्षेत्र के अनुसूचित जाति में सम्मिलित कर सकेगा। राज्य के सन्दर्भ ऐसा करते समय सम्बन्धित राज्य के राज्यपाल से परामर्श लेना आवश्यक है इसी अनुच्छेद के खण्ड 11 के अनुसार इस प्रकार की सूची निर्धारित हो जाने पर इस सूची में जाति सम्मिलित या निष्कासित केवल संसद के निर्णय के आधार पर ही हो सकती है। इनके अलावा संवधिान में जगह'–जगर पर और भी इनसे सम्बन्धित प्रावधान है।

भारतीय संविधन के अनुच्छेद 17 के द्वारा अस्पृश्यता को समाप्त कर दिया गया इनके प्रयोग को अपराध करार दिया गया। अनुच्छेद 15 के द्वारा धर्म, प्रजाति, लिंग, जाति अथवा जन्म स्थान के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव को अवैध माना गया है। फलतः दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों, धार्मिक स्थलों आदि में प्रवेश एवं उपयोग के संदर्भ में उन्हें भी उसी प्रकार की सुविधा मिल गई है जैसा कि अन्य नागरिकों को प्राप्त है। इसी प्रकार अनुच्छेद 19 में प्राप्त स्वतंत्रताएँ, अनुच्छेद 25 में प्राप्त सरकारी निधि से संचालित धार्मिक हिन्दू संस्थाओं में प्रवेश की सुविधा, अनुच्छेद 23 के अनुसार मनुष्यों के व्यापार तथा जबरदस्ती मजदूरी पर रोक आदि प्रावधानों को मौलिक अधिकारों के अन्तर्गत रखकर इनकी स्थिति कानून की दृष्टि से अधिक सुरक्षित कर दी गई है।

केन्द्रीय तथा राज्य की सरकारी सेंवाओं में आरक्षण की व्यवस्था, (अनुच्छेद 330 तथा अनुच्छेद 332) लोकसभा तथा राज्य की विधानसभाओं में इनके स्थानों को आरक्षित करके एवं अनुच्छेद (335, 338, 338 क एवं 341, 342) अनुसूचित जाति के कल्याण कार्यक्रमों की देखरेख के लिए विशेष अधिकारों की व्यवस्था करके तथा प्रशासनिक नियंत्रण की विशेष सुबिधा प्रदान करके (अनुच्छेद 244) संविधान में इनके विकास और सुरक्षाकी पूर्ण व्यवस्था कर दी गई है।

भारतीय संविधान में उल्लिखित इन विशेष प्रावधानों के कारण इनमें राजनीतिक चेतना उत्पन्न होने में सहायता मिलती है। इससे शासन सत्ता में इनकी भागीदारी सुनिश्चित हुई है ओर साथ ही व्यवस्था पर दबाव भी बनाने में यह वर्ग सफल रहा है जिससे सरकारी की तरफ से इनके कल्याणकारी कार्यों के सम्पादन के लिए विशेष रूप से दबाव बना रहता है।

संविधान संशोधन जो 1990 में 65वॉ संशोधन कहलाता है अनुसूचित जातियों के संरक्षण में मील का पत्थर साबित होता है। इसी समय राष्ट्रीय अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति आयोग का गठन किया गया साथ ही इसको अब और भी अधिक शक्तिशाली बनाया गया है। आयोग अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को समय–समय पर भेजते रहते हैं जिसमें उसकी समस्याओं व उनको दूर करने के सुझाव तथा सम्पादित कल्याण कार्यक्रमों की समीक्षा होती है। इनके साथ ही संसद में इनसे सम्बन्धित एक स्थायी समिति की भी व्यवस्था कर दी है जो संविधान के द्वारा प्रदत्त इनके सुरक्षात्मक और विकासात्मक उपायों के क्रियान्वयन की समीक्षा करती रहती है।

इसके अतिरिक्त राज्य स्तर पर राज्य सरकारें अपने–अपने राज्यों में इनकी स्थिति के अनुसार अनेक प्रकार के कल्याणकारी उपायों की सर्जना करती हैं। सरकार ऐसी स्वयंसेवी संस्थाओं को भी अनुदान सहायता प्रदान करती हैं जो इनके उत्थान के लिए प्रयासरत हैं। शैक्षिक विकास के लिए छात्रों को विशेष रूप से छात्रवृत्तियाँ व पुस्तक बैंक योजना लागू की गई है।

भारतीय संविधान के भाग–4 में राज्य के नीति निर्देशक तत्वों वाले अध्याय में शासनतंत्र को अनुच्छेद 46 के अन्तर्गत यह नियम दिए हैं कि वह समाज के कमजोर वर्गों विशेषकर अनुसूचित जातियों के शैक्षणिक एवं आर्थिक हितों को बढ़ावा देने के लिए विशेष प्रयास करेगा तथा सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषणों से मुक्ति के लिए उनकी सहायता करेगा। इसी आधार पर उनके लिए विभिन्न स्तरों पर आरक्षण की व्यवस्था की गई है। इसका विस्तार राजनीतिक, प्रशासकीय एवं शैक्षणिक क्षेत्रों तक किया गया है। राजनीतिक आरक्षण को स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के निम्न स्तर तक लाया गया है। उनके ऊपर सामाजिक अत्याचार को रोकने के लिए प्रारम्भ में अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम 1955 बनाया था जिसे 1976 में संशोधित करके नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम 1955 कर दिया। इस अधिनियम के अन्तर्गत दोषी व्यक्ति को सजा की तिथि से छः वर्ष तक संसद तथा राज्य विधानसभा का चुनाव, जनप्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 की धारा 8 अनुसार, नहीं लड़ सकता है। इसी प्रकार अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम 1989 पारित किया गया जिससे इनके ऊपर होने वाले अत्याचारों को रोका जा सके।

अनुसूचित जाति की स्थिति व भूमिका में इन सबसे ठोस परिवर्तन हुए उनसे सम्बन्धित अनेक परम्परागत निर्योग्यताओं में काफी परिवर्तन आया परन्तु इन जातियों में राजनीतिक महत्वाकांक्षा बढ़ाने के लिए जो जातीय गुटबंदी हुई है और ये जातियाँ अपनी कड़वाहट को जिस तरीके से प्रकट करती हैं उससे जहाँ जातीय चेतना का भाव पैदा हुआ है वहीं यह सामाजिक तनाव को जन्म देने के लिए भी उत्तरदायी है, जाति युद्ध इसी का परिणाम है। विकास के कल्याणकारी कार्यक्रमों का इनकी जातियों को समान रूप से लाभ नहीं हुआ। इन जातियों में आपस में ही आर्थिक एवं सामाजिक विषमताएं उत्पन्न हो गई। कुछ जातियों को आगे बढ़ने का अधिक अवसर मिला और कुछ दौड़ में पीछे रह गई। जिन लोगों ने अवसर का लाभ उठाकर अपनी आर्थिक स्थिति मजबूत की वे शहरों व कस्बों में बस गए। इससे उनकों एक तो संविधानिक संरक्षण और दूसरा आर्थिक सम्पन्नता का लाभ मिल रहा है। इससे इनमें अपनी जाति के अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक गतिशीलता आई है। इनसे अपनी ही जाति समूहों के लोगों से प्रस्थिति आकांक्षाओं के स्तर परिवार प्रतिमान में अन्तर पाया जाता है। परिणाम स्वरूप इन लोगों में ही विभिन्न समूहों में काफी असमानता दिखाई देती है।

अनुसूचित जाति के लोगों ने उच्च जातियों के जीवन के तरीके का अनुकरण मात्र को ही अपने विकास का पर्याय माना है। अतः यह उन्हीं की तरह शिक्षा व सफेद पोश नौकरियों की तरफ अधिक आकर्षित हुए स्वस्था सामाजिक विकास की नजर में इसे उचित नहीं कहा जा सकता जिस नीति के अन्तर्गत उनकों ऊपर उठाने का प्रयास किया गया उससे वे आरक्षणवादी व्यवस्था के आदी बन गए और सरकारी सहायता पर पूरी तरह से आश्रित हो गए।

वस्तुतः आरक्षण की व्यवस्था तात्कालिक समस्या के समाधान के रूप में रखा गया था किन्तु इसकों जातीय राजनीति ने सार्वकालिक रूप दे दिया, इससे प्रतिभा के विकास का मार्ग अवरूद्ध हो गया। आरक्षण समाज–व्यवस्था के सकारात्मक विकास की अपेक्षा नकारात्मक सोंच का अधिक कारण बना हुआ है। अभी भी इस समुदाय में शिाक्षा के व्यापक प्रचार–प्रसार की आवश्यकता है। वस्तुतः इन सब समस्याओं के समाधान में ही हमारी व्यवस्था की कुशलता की परीक्षा और भविष्य निर्भर है। भारतीय समाज में सामाजिक न्याय की स्थापना तभी सम्भव है जब दलित, पिछड़े, निर्धन एवं कमजोर वर्ग के लोगों का उत्थान हो सके ताकि राज्य, समाज एवं राष्ट्र विकास के मार्ग को प्रशस्त कर सके।

सन्दर्भ

1 दरडा रणजीत सिंह–भारतीय लोकतंत्र और आन्दोलन की राजनीति, लोकतंत्र समीक्षा, 1973
2 कश्यप सुभाष–भारतीय सरकार एवं राजनीति–नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।
3 वसु दुर्गादास–कन्टीट्यूशनल लॉ ऑफ इण्डिया–प्रेन्टिस हाल ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली।
4 श्रीनिवास एम0एन0–कास्ट इन मार्डन इण्डिया, एशिया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।
5 नैयर, कुलदीप–इण्डियाः दि क्रिटिकल इयर्स
6 श्रीनिवास एम0एन0–सोशल चेन्ज इन मार्डन इण्डिया, आरियन्ट लागमेन्स पब्लि0, मुम्बई।
7 कोठारी, रजनी–कास्ट पॉलिटिक्स इन इण्डिया, आरियन्ट लागमेन्स पब्लि0, मुम्बई।
8 हट्टन जे0एच0–कास्ट इन इण्डिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, मुम्बई।
9 घूरिये जी0एस0–कास्ट क्लास एण्ड आक्यूपेशन, पापुलर प्रकाशन, मुम्बई।
10 वसु दुर्गादास–इन्ट्रोडक्शन टू द कन्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया–प्रेन्टिस हाल ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली।
11 गोयल जे0जपी0–इण्डिया गवर्नमेन्ट एण्ड पालिटिक्स, लाइट एण्ड लाइट पब्लिसर, नई दिल्ली।
12 कश्यप सुभाष–संविधान की आत्मा–नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।